ज्ञान तत्व 191

(क) लेख कृषि और उधोग एक दूसरे के पूरक है।

(ख) हिंदू समाज द्वारा हिंसा या अहिंसा की समीक्षा।

(ग) प्रज्ञा ठाकुर और पुरोहित के आतंकवादी होने की समीक्षा।

(घ) सर्वोदय के विषय में समीक्षा।

(च) दहेज,कानून,समीक्षा।

(छ) रमेशचंद्र कृष्ण के उत्तर में धर्मशास्त्र ,साहित्य,इतिहास,राजनीति,समाज आदि की समीक्षा।

(ज) आर0एल0 गुप्ता द्वारा साम्यवाद पर प्रश्न और उत्तर।

(क)कृषि और उद्योग एक दूसरे के पूरक हैं

भारतीय राजनेताओं और पश्चिम के राजनेताओं मे एक बहुत बड़ा फर्क यह है कि पाश्चात्य राजनीतिज्ञ बहुत सोच समझ कर कानून बनाते है। और भारत के राज्य नेताओं को कानून बनाने में मजा आता है। पाश्चात्य संसद अपने एक सत्र में जितने नये कानून बनाती है, भारतीय संसद उतने ही समय में उनसे कई गुणा अधिक कानून पास कर देती है। कई सौ वर्षो की गुलामी के बाद इन्हे कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हुआ। अधिकार शौक में बदल गया और जब हमारे नेता संसद और विधानसभाओं में बैठते है तो को तानाशाह से कम समझते ही नही । परिणाम यह होता है कि उनकी आधी अधूरी सोच ही कानून का स्वरूप ग्रहण कर लती है और देश एसे एसे अनावश्यक कानूनों को लम्बे समय झेलता रहता है। यह शौक कोई वर्तमान राज्यनेताओं में पैदा हुआ हो ऐसा नही है। स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही यह शौक पैदा हो गया था जब हमारे नेताओं ने किरायेदारों के पक्ष में कानून बनाया। कानून बनाने वालों में स्वयं को समाजवादी सिद्ध करने की होड लगी हुई थी । कानून बनाते समय यह नही सोचा गया कि यदि भविष्य में किराये के मकान बनने बन्द हो गये तब क्या करना होगा। परिणाम आज हम भुगत रहे है। इसी तरह अम्बेडकर जी ने हिन्दू कोड बिल बनाने की जल्दबाजी की । इस कोड बिल पर समाज में स्वतंत्र बहस होने ही नही दी गई। अम्बेडकर जी और नेहरू जी ने स्वतंत्र बहस न कराकर बिल के पक्ष में एकतरफा प्रचार कराया। इस एक पक्षिय प्रचार कराने में सरकारी खजाने तक का दुरूपयोग हुआ किन्तु आज तक कोई सवाल नही उठ सका कि कानून बनाने में इतनी जल्दबाजी क्यों ? संसद में जब कोड बिल पास होने में विलम्ब होने लगा तो अम्बेडकर जी ने नाराज होकर अपना इस्तीफा तक सौप दिया क्योकि वे तो उसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बना चुके थे।

आरक्षण का मामला भी वैसा ही था । देश के हर शुभ चिंतक यह समझते थे कि सवर्ण तथा अवर्ण के बीच की दूरी कम करने का अच्छा आधार आरक्षण नही है। जब तक

आदिवासियों, अवर्णो पिछडों की आर्थिक स्थिति नही सुधरती तब तक यह दूरी कम नही हो सकती । आर्थिक स्थिति सुधर सकती है श्रम की मांग और मूल्य बढने से । लेकिन हमारे नेताओं को तो संसद में अपना गुट मजबूत करना था । इन्होनें धड़ाधड़ संसद तथा नौकरियों में आरक्षण पास कर दिया जो आज धीरे धीरे हमारी व्यवस्था के लिये नासूर का रूप ग्रहण कर चुका है। पहले शासक और शासित की जो दूरी थी वह धीरे धीरे बढती चली गई क्योकि पहले शासक पक्ष में सवर्णो की बहुतायत होने से अलग रूप था । अब तो शासक पक्ष में आदिवासी हरिजन भी सवर्णो के साथ घुल मिल गये है। इसलिये अब बोलने वाला कौन है ?

यदि हम पाश्चात्य की कार्य प्रणाली की तुलना करें तो उन लोगों ने अपने अपने देशों में जो संविधान बनाये है उनमें शायद ही कभी संशोधन की जरूरत पड़ती हो । यदि संविधान में संशोधन भी करना हो तो सम्पूर्ण समाज में पक्ष विपक्ष के बीच बहस छिडती है। यदि आवश्यक हो तो जनमतसंग्रह भी होता है। तब बहुत विचार करके संविधान संशोधन होता है। अभी अभी दो हजार नौ के नवम्बर माह में स्विटजरलैंड में बहस छिड गई कि मुस्लिम मीनारों के उपर मीनार बनाना उचित है या नहीं। लम्बी बहस चली और सर्व सम्मति नहीं बनी । तब पूरे स्विटजरलैंड में जनमत संग्रह हुआ जिसमे सरकारी पक्ष हार गया और जनता ने विरोध में मत दे दिया । यहॉ भारत में तो गाजर मूली की तरह कानून बन जाते है। मैं अनेक कानूनों को जानता हूॅ जो आम लोग नही जानते क्योकि वे कानून पूरी तरह अनावश्यक तथा अव्यावहारिक होते हुये भी आज तक लागू है।

हमारे छतीसगढ़ में रमण सिंह जी मुख्यमंत्री है। शालीनता और समझदारी के मामले में औरों की अपेक्षा ठीक ठाक माने जाते है। किन्तु जल्दी जल्दी कानून बनाने का शौक इनको भी ज्यादा है। बैठे ठाले कुछ न कुछ नया करने की जल्दबाजी में उल्टे सीधे नियम बन जाना स्वाभाविक ही है। सरगुजा जिले में किसानों को गन्ने का उचित मूल्य मिले इसलिये शक्कर कारखाना लगवा दिया । कारखाना सरकारी है इसलिये घाटा भी होना ठीक नही। मिल के आस पास के किसानों के गन्ना विक्रय तथा गुड़ पर प्रतिबंध का फरमान भी जारी कर दिया गया। तर्क दिया गया कि ऐसा फरमान तो पूरे देश भर की गन्ना मिलों के आस पास लागू है। हुआ यह कि गन्ना फैक्ट्री समय पर चालू ही नहीं हो पाई। बेचारे किसानों का गन्ना खेतों में ही खड़े खड़े सूख गया क्योकि न वे किसी अन्य को बेच सकते थे न ही गुड़ बना सकते थे। हमारे संवेदनशील मुख्यमंत्री जी ने ऐसे किसानों की कोई सुध ही नहीं ली क्योकि सरगुजा कोई बिहार यू.पी. तो है नहीं जो हो हल्ला होगा। बेचारे किसानों ने इस वर्ष बहुत कम मात्रा में गन्ने की खेती की। सरकारी अफसर अब किसानो की खुशामद कर रहे है कि वे गन्ने का रकबा बढ़ावें। गन्ने की खुली बिक्री पर रोक का औचित्य क्या था? जब बाजार में शक्कर चालीस रूपये बिक रही है तो किसानों को अपने गन्ने का मोलभाव करने पर रोक क्यों? क्योकि यदि किसान गन्ना मंहगा देगा तो मिल मालिक से सरकार सस्ती चीनी लेवी के रूप में नहीं ले सकेगी। अपनी लेवी सस्ती रखने के लिये किसानों पर अमानवीय अत्याचार हुए और सरकार चुप रही।

आजकल रमण सिंह जी पर भी क्षेत्रीयता का भूत सवार है। महाराष्ट्र का आजकल खुब अध्ययन कर रहे है। महाराष्ट्र मे जिस तरह मराठी भाषा को प्रोत्साहित किया जा रहा है उसी तरह रमण सिंह जी भी छतीसगढ़ी के विस्तार के पीछे दीवाने है। जो लोग हिन्दी नहीं

समझ पाते उन क्षेत्रो में छतीसगढ़ी को सुविधा की दृष्टि से लागू करने का तो औचित्य है। किन्तु छतीसगढ़ी को अपनी पृथक अस्मिता के साथ जोड़ने की शुरूवात हो रही है। अभी तो यह गंभीर मामला नही है किन्तु भविष्य में इस प्रयास से हानि अधिक और कम लाभ होना निश्चित है।

इसी क्षेत्रीयता की कड़ी में रमण सिंह जी को एक नई बात सुझी है कि छतीसगढ़ में कृषि भूमि के विक्रय पर कुछ इस प्रकार प्रतिबंध लगे कि कृषि भूमि बाहर के लोग तो बिल्कुल ही न खरीद सके और यहॉ के लोग भी खरीदे तो खेती के अलावा अन्य कार्यो में उनका उपयोग न कर सकें। अन्य कार्य से उनका आशय उद्योग या निवास कालोनी या मकान बनाने का है। इस सोच को आगे बढ़ाने के लिये रमण सिंह जी ने वाकायदा महाराष्ट्र सरकार का अध्ययन भी कराया है। यह बात सच है कि धीरे धीरे खेती का रकबा घट रहा है और मकान या उद्योगों में खेती की जमीन बदल रही है। इस प्रवृति को रोकने की आवश्यकता से मै सहमत हूॅ। किन्तु मैं रमण सिंह के सुझाव को आत्मघाती प्रस्ताव मानता हूॅ। किसी कानून के द्वारा मजबूर करके खेती का रकबा बढ़ने की खुशफहमी तो हो सकती है किन्तु रकबा नही बढ़ सकता। जिस तरह खेती का क्षेत्रफल बढ़ाना चाहिये उसी तरह उद्योगों का भी क्षेत्र बढ़ना चाहिये और उसी तरह मकान भी बनाने चाहियें । तीनो काम आवश्यक है। एक का गला घोटकर दूसरे को प्रोत्साहन संभव नही है। छतीसगढ़ के विधानसभा भवन में न खेती होती है न उद्योग । वहॉ तो सिर्फ कानून के बीज बोये जाते है और अधिकारो की फसल काटी जाती है। नेताओं को क्या पता कि खेती का रकबा घट क्यों रहा हैं। सच बात तो यह है कि खेती अलाभकार होने से बड़ी मात्रा में खेती पड़त भूमि के रूप मे रह जा रही है। मैनें स्वयं महाराष्ट्र में जाकर इस स्थिति को समझा है। जब छतीसगढ़ बना उस समय कृषि उपज के क्रय विक्रय पर मंडी टैक्स पचास पैसा प्रति सैकड़ा था। बिहार में नीतिश ने उस मंड़ी टैक्स को माफ कर दिया और जोगी रमण सिंह की सरकार ने उक्त कृषि उपज पर मंडी कर को चार गुणा बढाकर दो प्रतिशत कर दिया । किसानों को तोहफा दिया गया टैक्स बढाकर । अन्य कई प्रकार के टैक्स तो अलग से है ही । कृषि उपज वन पर भारी भारी टैक्स लगाकर तथा प्रतिबंध लगाकर आप खेती को प्रोत्साहित नही कर सकते । पिछले चालीस पचास वर्षो से आपने किसानों को खेती करने से निराश कर दिया है। किसान या तो नौकरी खोज रहा है या कोई अन्य उद्योग खोज रहा है किन्तु खेती नहीं करना चाहता जब तक कि अच्छे साधन उपलब्ध न हो । आप कानून बनाकर यदि कृषि का क्षेत्र बढ़ाने की कोशिश करगें तो उससे कई गुना अधिक औद्योगिक क्षेत्र को नुकसान होगा । भारत सरकार ने पिछले दो वर्षो से कृषि उत्पाद मूल्य बढाने पर आंशिक ध्यान दिया है। छतीसगढ़ सरकार ने भी अच्छी पहल की है। कुछ लाभ भी दिखने लगा है। किन्तु उस लाभ के जल्दबाजी में उद्योगों और मकान बनाने पर कानूनी प्रतिबंध तो बहुत ही घातक होगा । एक ऐसे ही सिरफिरे अफसर ने बस्तर के अबूझमाड़ क्षेत्र में बाहरी लोगो के प्रवेश पर ही रोक लगा दी थी । तीस वर्ष बाद उस क्षेत्र का हाल देख रहे है कि वह क्षेत्र विकास से कितना पीछे रह गया। आज वह क्षेत्र पूरे भारत के लिये सिर दर्द बना हुआ है। छतीसगढ़ से बाहर के लोग छतीसगढ़ में उद्योग लगाने की भूमि न खरीद सके यह बात वैसे ही किसी सिरफिरे ने आपको समझाई होगी। महाराष्ट्र के किसानों की बाहरी लोगों को जीमन बेचने पर रोक का तो रमण सिंह जी अध्ययन करा रहे है, साथ ही यह अध्ययन करावें कि महाराष्ट्र का ही किसान इतनी आत्महत्याऍ क्यो कर रहा है? किसानों की भमि विक्रय पर कई तरह के प्रतिबंधो से किसानो की भूमि के मूल्य कम हो

गये। उनकी भूमि बिकी नही । फिर आत्म हत्या क्यों? यदि कृषि भूमि का क्षेत्रफल घटने की रमण सिंह जी को इतनी चिन्ता है तो किसानो की भूमि का मूल्य कम न हो इसकी चिन्ता कौन करेगा ?

वर्तमान के कुछ वर्षो मे छतीसगढ़ का औद्योगिक तीव्र विकास हुआ है। यहॉ कृषि भूमि के मूल्य भी तजी से बढ़े है। मै बिल्कुल ही नही समझ पा रहा कि एक ओर तो रमण सिंह जी बड़े बड़े उद्योगपतियों को छतीसगढ़ लाने के लिये खुशामद कर रहे है दूसरी ओर स्वयं अपने प्रयत्नों से जमीन खरीद कर लघु उद्योग लगानें वाले के राह में रोड़े अटका रहे है। मैनें एक घटना सुनी थी कि भारतीय समाजशास्त्री कैसी बचकानी बातें करते है। घटना के अनुसार यह मांग उठी कि आदिवासियों का चौतरफा विकास तो खूब हो किन्तु उनकी मूल संस्कृति पर कोई आंच न आवें । ये दोनो ही बातें बिल्कुल विपरीत है किन्तु दोनो ही प्रयत्न एक साथ चलते रहें। परिणाम हुआ कि न उस क्षेत्र का तीव्र विकास ही हुआ न संस्कृति का रक्षण ही हुआ । यदि विकास होगा तो रहन सहन बदलना स्वाभाविक है। किन्तु हम ऐसी ऐसी विपरीत बाते करते है। रमण सिंह जी भी वैसा ही कर रहे है। छतीसगढ़ का औद्योगिक विकास और कृषि विकास दोनो एक साथ ही चल सकते है। यदि एक को दबा कर एक को उठाया गया तो दोनो से हाथ धोना पड़ सकता है। छतीसगढ़ में अभी दोनो दिशाओं में विकास के कारण रमण सिंह जी को जो पूरे भारत मे वाहवाही मिली है उस वाहवाही में अब धैर्य खोना ठीक नही। किसानों की भूमि विक्रय पर रोक लगाकर रमण सिंह जी किसानों का बहुत बड़ा अहित करनें जा रहे है। किसानों को प्रोत्साहित करिये । उन लोगो पर लगे कानूनी प्रतिबंध हटाइयें । उनके उत्पादन के क्रय विक्रय के बीच से टैक्स हटाइये। कृषि उत्पादन के विक्रय मूल्य को ऐसा रखिये कि किसान स्वयं ही खेती की ओर झुकने लगे।

पिछड़े पन का स्थायी समाधान है विकास न कि शोषण से सुरक्षा । शोषण से सुरक्षा अस्थायी कदम हो सकता है किन्तु समाधान नहीं। कृषि और उद्योग एक दूसरे के पूरक है, प्रतिस्पर्धी नहीं । छतीसगढ़ में उद्योगों के विस्तार से प्राप्त आय को रमणसिंह जी ने कृषि सहायता पर खर्च भी किया है। अब पता नही वे क्यों दोनो को पृथक पृथक देखने लगें ?

मै समझता हूॅ कि रमणसिंह जी अपने निर्णय पर फिर से विचार करेगें । और यदि नही करेगे तो छतीसगढ़ की औद्योगिक प्रगति को गंभीर क्षति पहुचायेगें और अब तक मेरे सरीखे अनेक विचारक रमण सिंह जी की एक पक्षीय प्रशंसा करते रहे है उन्हें बाध्य होकर इस विषय पर उनकी चर्चा भी करनी पड़ेगी ।

कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर

ज्ञान तत्व एक सौ अठासी पढ़ने के बाद प्रश्न पैदा हुए । उत्तर देने की कृप्या करें ।

(ख)प्रश्नः–1. शीर्ष लेख लगा चुनरी में दाग में आपने लिखा है कि '' हिन्दू समाज का यह विशेष गुण होता है कि वह सामान्य स्थिति में बल प्रयोग का सहारा न लेकर बल प्रयोग का दायित्व राज्य व्यवस्था पर ही छोड देता है । यदि व्यवस्था कुछ न भी करे तो वह ईश्वरेच्छा समझकर उसे स्वीकार कर लेता है किन्तु प्रतिकिया नहीं करता । क्या आपकी सोच में वर्तमान

स्थिति सामान्य है? जब समाज में इसाई, मुसलमान और साम्यवाद चारों ओर से हिंदू समाज को घेर रहा हो, इस घेराव में वह धूतर्ता से लेकर बल प्रयोग का सहारा ले रहा हो, राज्य से जुड़ी अधिकांश ताकते इन सबके साथ तालमेल कर रही हो तब भी क्या हिन्दू समाज स्थिति को असामान्य न समझे ?

उत्तरः— प्रश्न मात्र इतना ही नहीं हैं कि स्थिति सामान्य है या असामान्य । विचारणीय प्रश्न यह है कि स्थिति का समाधान क्या है ? पिछले साठ वर्षो से स्थिति सुधरने के अपेक्षा बिगड़ ही रही है। तब क्या अब मार्ग पर फिर से विचार नही होना चाहिये ? यदि परिस्थितियॉ अधिक विकट हो तो डण्डे की अपेक्षा बुद्धि का अधिक उपयोग करना चाहिये । अभी कुछ दिन पूर्व ही न्यायालय के एक केस का फैसला हुआ जिसमें एक थ्री व्हीलर पर सवार युक्ती पर कुछ गुण्डो ने हमला किया । रिक्सा ड्राइवर गुण्डो से टकराया । युक्ती का विश्वास अर्जित किया और स्वयं बलात्कार का प्रयत्न किया । हिन्दू धर्म पर आये इस्लाम, इसाई, साम्यवादी संकट का जो भय बताया गया वह सच है किन्तु उस भय के नाम पर सता का खेल खेलना गलत था । इस सता के लालच में हिन्दू समाज बंटता चला गया । काग्रेस, सामाजवादी या अन्य सभी दलो की सहानुभूति हिन्दू विरोधियों के साथ हो गई । मेरे विचार में हिन्दुओं के बीच सता के स्वार्थ के कारण फूट डाली गई अन्यथा इस तरह अन्य दल वाले हिन्दू विरोधियों के साथ नही जुड़ते । नरसिंह राव जी की सहानुभूति हिन्दुओं के साथ सर्वविदित है। फिर क्या कारण था कि उनके साथ भी धोखा किया गया । और मुख्य बात यह है कि सब कुछ करने के पीछे आपकी मंशा हिन्दू हित ज्यादा थी या राजनैतिक सता ? मै तो समझता हूँ कि भारत के हिन्दुओं को यह विश्वास करा दिया जाय कि हिन्दू एकता सिर्फ हिन्दुत्व के लिये समर्पित है तो कोई समस्या ही पैदा नही होगी । अहिंसक तरीके से ही सब कुछ ठीक हो जायेगा ।

(ग)प्रश्नः—2 आपने जो लिखा उससे यह आभास होता है कि प्रज्ञा ठाकुर और कर्नल पुरोहित के आतंकवादी होने का आपको पूरा पूरा विश्वास हो गया है जबकी अभी उनका मामला विवादस्पद ही है। आपके विश्वास का आधार क्या है ?

उत्तरः— मुझे पज्ञा ठाकुर तथा कर्नल पुरोहित के आतंकवादी होने का विश्वास हो गया है और उस विश्वास का आधार वैसा ही है जैसा विनायक सेन के नक्सलवादी सम्पर्को का है अथवा प्रोफेसर गीलानी का संसद आक्रमण से संबंधित है। प्रोफेसर गीलानी न्यायालय से निर्दोष घोषित हो चुके है और अब हम उन्हें अपराधी नही कह सकते । फिर भी विश्वास तो आज भी वही है जो न्यायालय के निर्णय से पहले था । विश्वास और यथार्थ में अतंर होता है । यथार्थ सत्य ही होता है जबकि विश्वास कई बार बदल भी जाता है। यदि प्रज्ञा ठाकुर और पुरोहित जी न्यायालय से बरी भी हो जावें तब भी आवश्यक नही कि विश्वास बदल जावें क्योकि बाद में बम रखने वाली घटना ने उस विश्वास को मजबूत कर दिया है।

कभी कभी विश्वास असत्य भी हो जाता है। ब्रम्हदेव जी शर्मा हमेशा बड़े बड़े कारखानों का विरोध करते थे और मैं शर्मा जी को विकास विरोधी मानता रहा । अब जब सरगुजा में शक्कर कारखाना लगा और सरकार ने कारखानों के हित में किसानों का गला घोटना शुरू किया तब मुझे ही विश्वास पर संदेह उत्पन्न होने लगा । मुझे महसूस हुआ कि बड़े बड़े कारखानें लगने का बिना ठीक से समझे समर्थन ठीक नही है। हो सकता है कि शर्मा जी ही

ठीक हो और मैं गलत होउॅं। इस लिये मै कुछ सतर्क हुआ । इसी तरह गोधरा रेल हादसा के संबंध में मेरे निकट के मित्रों तक ने घटनास्थल से लौट कर मुझे बताया कि उस रेल आक्रमण से बाहर के मुसलमानों का कोई सम्बन्ध प्रमाणित नही है। बनर्जी आयोग का भी यही निष्कर्ष है किन्तु मेरा विश्वास आज भी वही है। मैं आज भी लिखता हूॅं तो विश्वास के ही आधार पर लिखता हूॅं। यदि किसी साथी को पूरा पूरा विश्वास हो कि प्रज्ञा ठाकुर और पुरोहित जी को योजना पूर्व फंसाया गया है तो मै दस पांच दिनों का समय निकाल कर उनके साथ सच्चाई जानने निकलने को भी तैयार हूॅं।

(घ)प्रश्नः—3 आप आजकल सर्वोदय के विषय में कुछ न कुछ लिखते ही रहतें है। दो वर्ष पूर्व तो सर्वोदय ठीक था और एका एक आज इतना गलत हो गया कि हर अंक में ही कुछ न कुछ अवश्य लिखा जाये।

उत्तरः— कोई भी व्यक्ति या संस्था न अच्छी होती है न बुरी । अच्छी और बुरी कहना इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी तुलना किसके साथ हो रही है । सर्वोदय के कार्यकर्ताओं की तीन आधार पर पहचान होती है — 1. शासन मुक्ति या लोकस्वराज्य 2. अहिंसक समाज रचना 3. सता संघर्ष से निर्लिप्तता । संघ परिवार तीनो मामलों में सर्वोदय से कमजोर है। यदि सर्वोदय की तुलना संघ से होगी तब तो सर्वोदय की प्रशंसा होगी किन्तु सर्वोदय की तुलना लोकस्वराज्य अभियान से होगी तो सर्वोदय की आलोचना होगी । सर्वोदय में भी विचार करते समय जो लोग सता के साथ जुड़कर अन्दर अन्दर पद या सुविधा के चिन्ता करेंगे उनकी तुलना अन्य त्यागी तपस्वी गांधीवादियों से नही हो सकती।

आम तौर पर सर्वोदय के लोग शरीफ माने जाते है । अब यदि किसी धूर्त व्यक्ति के साथ किसी सर्वोदयी की तुलना होगी तो सर्वोदय कार्यकर्ता की प्रशंसा होगी किन्तु किसी समझदार से तुलना होगी तो सर्वोदय कार्यकर्ता की आलोचना होगी क्योकि माना जायेगा कि वह बहुत शरीफ होने से आसानी से ठगा जायगा । अच्छे और बुरे की प्रस्तुति देश काल परिस्थिति के अनुसार हुआ करती है।

मैंने कई वर्ष से सबके विषय में कुछ न कुछ लिखा हैं । आपका यह आरोप गलत है कि मेरी भाषा बदल गई है। पिछले एक वर्ष से सर्वोदय में लगातार बंग जी के नेतृत्व में लोक स्वराज्य के प्रति विश्वास और समर्थन बढ़ता ही जा रहा है । विरोध करने वाले अलग थलग पड़ रहे है। स्वाभाविक है कि मेरी एक पूर्व के सर्वोदय के प्रति भाषा कुछ बदलेगी । फिर भी यदि पिछले पंद्रह बीस वर्षो में मैनें सर्वोदय के सम्बन्ध जब भी कुछ लिखा है, यदि आपको उसमें अब कोई अन्तर दिखे तो आप लिखियेगा । मै आश्वस्त हूॅं कि ऐसा अन्तर कही नही हुआ है। अन्तर सिर्फ इतना हुआ है कि सर्वोदय के लोग मुझे अपने संगठन के साथ जुड़ा हुआ मानते थे । बाद में उनका भ्रम दूर हुआ तो निराशा स्वाभाविक है। मै किसी के साथ जुड़ा हुआ नही हूॅं। मैं तो लोक स्वराज्य के लिये समर्पित हूॅं जो बिल्कुल स्पष्ट ही है।

(च)प्रश्नः—4 रैपिड सनसनी मासिक में छपे समाचार के अनुसार दहेज संबंधी धारा चार सौ अठान्नवे ए के परिणाम स्वरूप देश को करीब पैंतालीस सौ करोड रूपये का प्रति वर्ष नुकसान होता है। ये

आकड़े सेव इन्डियन फेमिली फाउन्डेशन की रिपोर्ट के आधार पर लिखे जा रहे है। कर्नाटक लॉ कमीशन के जस्टिस वी. सी. मलिमथ के निर्देश पर उक्त जानकारी फाउन्डेशन ने जुटाई है।

फाउन्डेशन की रिपोर्ट के अनुसार उक्त धारा का सदुपयोग कम और दुरूपयोग बहुत अधिक हो रहा है। अनेक परिवार झूठे मुकदमों में फंसाकर जेल में रख दिये गये है। पति पत्नि के बीच विवाद में उक्त धारा का झूठा उपयोग करना तो आम बात है। इस सर्वेक्षण में सलाह दी गई है कि सरकार ऐसे कानून मे संशोधन करने की सोचे। आपकी क्या राय है?

उत्तरः— किसी भी वर्ग को कोई भी विशेषाधिकार देना हमेशा ही घातक होता है क्योकि चरित्र का अधिकांश हिस्सा व्यक्तिगत ही होता है। सामूहिक भाग बहुत कम होता है। यदि हम किसी वर्ग के चरित्र को सामूहिक मानते है तो दुरूपयोग होना निश्चित है क्योकि उक्त वर्ग में शरीफ और धूर्त दोनों प्रकार के लोगो का समावेश है। उक्त विशेषाधिकार का जितना लाभ शरीफ उठायेगें उससे कई गुना अधिक लाभ धूर्त उठाकर समाज के समक्ष समस्याएँ पैदा करेंगे। मैं तो बहुत पुराने समय से इस धारा के दुरूपयोग के अनेक प्रकरण प्रत्यक्ष देख चुका हूँ। मैं तो महिला उत्पीड़न के साथ साथ आदिवासी हरिजन उत्पीड़न जैसे विशेषाधिकारों का दुरूपयोग देखता रहा हूँ। विवाह का वचन देकर दैहिक शोषण को बलात्कार कहने वाले नियमों को भी मैं बिल्कुल ही गलत मानता हूँ। इसमें धोखा का मुकदमा तो संभव है किन्तु बलात्कार कहॉ से आ जाता है यह पता नहीं।

मेरी यह बिल्कुल सलाह है कि महिलाओं को पूरी तरह समान अधिकार दे दिया जावें और विशेष अधिकार वापस ले लिये जावें। मैंने अब तक उक्त रिपोर्ट न देखी है न सुनी है। कभी देखने का अवसर मिला तब व्यापक चर्चा करूंगा।

(छ)श्री रमेशचन्द्र कृष्ण, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश

मैनें आपकी सेवा में चौबीस अप्रेल को अपना ग्रन्थ ज्योतिर्मय जनार्दन भेजा था। यदि आप ज्ञानतत्व में उसकी चर्चा कर देते तो ग्रन्थ का परिचय क्षेत्र बढ़ जाता किन्तु आपने इतनी अधिक उपेक्षा की कि अब मेरा धैर्य जबाब दे गया है। पांचजन्य, राष्ट्र धर्म, चन्दन कुलदीपिका, विवके ज्योति आदि में इसकी समीक्षा प्रकाशित हुई जिसके परिणाम स्वरूप उनका प्रचार भी हुआ। यह ग्रन्थ मैनें घर घर जाकर लिये अर्थ सहयोग से छपवाया है। यह कोई बीस तीस पृष्ठ की प्रत्रिका तो है नही। कई सौ पृष्ठों का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यदि आप समझते है कि ग्रन्थ आपके स्तर का नहीं है तो आप इसे वापस कर दें जिससे मैं कही अन्यत्र उसका उपयोग कर सकूँ।

उत्तरः— आपका पत्र मुझे मिला। मुझे आप लोगो का नियम नही पता था कि एक दूसरे की पुस्तक की प्रशंसा छापनी पड़ती है। आपकी पुस्तक की थोड़ी सी विषय वस्तु को देखकर मैनें समझा कि इसमें साहित्य भी हैं और धर्मशास्त्र भी किन्तु समाजशास्त्र नहीं है। मैं न साहित्यकार हूँ न ही धर्मशास्त्रों का मुझे ज्ञान है। मुझे इतिहास का भी कोई जानकारी नहीं। मुझे तो सिर्फ

समाजशास्त्र का ही ज्ञान है जो उसमें है नहीं। आपने समाजशास्त्र के नाम पर कुछ शब्द लिखे भी है किन्तु समाजशास्त्र न होकर इतिहास है। इसलिये उक्त ग्रन्थ मेरी क्षमता से उपर का ग्रन्थ है।

हम कई साथियों की टीम में धर्मशास्त्र, साहित्य तथा इतिहासकार भी है। मैनें अपने उक्त विद्वान साथी को वह ग्रन्थ पढ़ने के लिये दे दिया है। उनकी प्रतिक्रिया भेंट होने पर पूछूँगा तब आपको लिख दूंगा किन्तु उक्त चर्चा ज्ञानतत्व में देना संभव नही है। क्योकि ज्ञानतत्व का उद्देश्य विभिन्न समाजिक विषयों पर विचार मंथन तक सीमित है। आपकी पुस्तक की समीक्षा लिखना कोई विचार मंथन न होकर विचार प्रचार है जो पत्रिका का उद्देश्य नही है। आपने कुछ पत्रिकाओं का नाम लिया है। वे सब किसी विचार धारा के प्रचार के लिये समर्पित है और आपकी पुस्तक ऐसी विचार धारा के प्रचार की सहयोगी है। ज्ञानतत्व के लिये वैसा करने में कठिनाई है।

आपने पुस्तक वापसी की बात लिखी। मैनें पुस्तक मंगाई भी नही थी और वापसी की शर्त पर आपने भेजी भी नहीं थी। मुझे लगा कि आपने मुझे पढ़ने और उपयोग करने के लिये पुस्तक भेजी है। मुझे अब तक यह भी पता नही था कि साहित्य के मामले में ऐसा भी कोई रिवाज है। इस लिये हो सकता है कि मुझसे कोई भूल हुई हो। किन्तु अब पुस्तक या उसका मूल्य भेजना मेरे लिये संभव नही है। मैं यह भी नही जानता की आपकी आर्थिक कठिनाई को देखते हुए पैसा भेज कर एक अनुचित परंपरा को जन्म दूँ। इसलिये मेरी ईच्छा है कि उक्त पुस्तक प्रकरण को आप अब समाप्त समझें।

(ज) श्री आर. एल. गुप्ता, सेठी नगर, फ्रीगंज, उज्जैन, मध्यप्रदेश

मैनें आप से कई बार कहा भी लिखा भी कि आप एक बार मार्क्स का लिखा कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र पढ़ ले। यह पत्र कुल मिलाकर सैंतालीस पेंज का है ही लेकिन पता नही आप क्यों पढ़ना नही चाहते हैं। आप ग्राम सभा को सशक्त करना चाहते है। आप परिवार व्यवस्था को भी रक्त संबंधों तक सीमित न करके कम्यून तक ले जाने के पक्षधर है। आप मानते है कि धन और बुद्धि मिलकर श्रम का शोषण कर रहे है। जब आप इतना मानते ही है तो फिर मार्क्स को पढ़ने से हिचक क्यों रहे हैं ?

आज कम्यूनिस्टों ने ही मार्क्स को विवादस्पद बना दिया है। मार्क्स ने अहिंसा का ही समर्थन किया था। गांधी ने स्वयं कई जगह मार्क्स के विचारों को स्वीकार किया है। ऐसी स्थिति में आप जिस तरह गांधी, जयप्रकाश, लोहिया और बिनोवा के लोकस्वराज्य संबंधी विचारों पर चर्चा का आयोजन कर रहे है उसी चर्चा में मार्क्स को भी जोड़ लेने में क्या हर्ज है। मेरी इच्छा है कि आप मार्क्सवादियों की नजर से मार्क्स को न देखकर अपनी स्वयं की नजर से देखने की पहल करें।

उत्तरः— यह सच है कि मैनें न गांधी को पढ़ा न मार्क्स को। गांधीवादियों ने हमेशा यह बात बताई कि गांधी अकेन्द्रीत शासन व्यवस्था के पक्षधर थे। मैनें भी समझा कि गांधी स्वशासन चाहते थे भले ही उनके मरते ही उनके भक्तों ने स्वशासन की जगह सुशासन के प्रयत्न शुरू कर दिये । दूसरी ओर आज तक किसी भी मार्क्स को जानने वाले ने कभी यह नही कहा कि मार्क्स अकेन्द्रीत शासन के पक्षधर थे । सदा केन्द्रीत शासन व्यवस्था और सुशासन की ही बात बताई गई । आपने भी मार्क्स की अहिंसा के पक्ष को तो उजागर किया है किन्तु मार्क्स के सुशासन की जगह स्वशासन प्रणाली के प्रतिपादन की कोई बात नही बताई। मैं गांधी की

अहिंसा का उतना समर्थक नही जितना शासन मुक्ति अर्थात् न्यूनतम शासन का । मार्क्स ने कहा है कि अधिकतम शासन के बाद शासन मुक्ति स्वतः हो जायेगी जबकि गांधी ने कहा कि प्रारंभ से ही लोक स्वराज्य होना चाहिये। मार्क्स के अधिकतम शासन का प्रयोग हो चुका और शासन मुक्ति की दिशा नही आई । यही कारण रहा कि मार्क्स को असफल घोषित कर दिया गया। गांधी के स्वराज्य का प्रयोग अब तक शुरू ही नही हुआ क्योकि गांधीवादी ही गांधी के जाते ही मार्क्सवाद और समाजवाद का प्रयोग करने लगे तो गांधी को तो पिछड़ना ही था । अब मार्क्सवाद के नाम पर प्रयोग करने वाले थक गये है और नयी खोज शुरू हुई है। केन्द्रीय शासन पूॅजीवाद की राह पकड़ रहा है और हम लोग लोकस्वाराज्य का प्रयोग शुरू कर रहे है । इन दोनों प्रयोगो के बीच मार्क्स कही फिट ही नही हो रहे । यदि आप लिखे कि मार्क्स को समझने में भूल हुई है तो आपने ने तो मार्क्स को समझा है। आप बताइये कि मार्क्स लोकस्वराज्य अथवा अकेन्द्रीत व्यवस्था के पक्षधर थे तो हम उस पर अवश्य विचार करेंगे।